9

पूषन्सूक्त और उषस्सूक्त

प्रस्तावना

इस पाठ से दो सूक्तों को हम आत्मसात करेंगे।

वेद में पूसन्सूक्त (म-6.54) प्रसिद्ध सूक्त है। पूषा यह शब्द पोषण अर्थक पुष्-धातु से बना है। यास्क के मत के अनुसार से आदित्य का रूप किरणों के द्वारा पुष्ट होता है, इसलिए वह पूषा कहलाता है। बृहद्देवताकार शौनक के मतानुसार से पूषा पोषण करता हुआ पृथ्वी को पोषित करता है, तथा किरणों के द्वारा अन्धकार को हटाता है। पूषा वस्तुत सूर्य ही है। लोगो ने बाद में इसको भिन्न रूप देकर सूर्य से अलग विशिष्ट रूप का उसमें आरोप किया है। जो सभी लोगों के लिए आवश्यक है। इस पूषन्सूक्त के भारद्वाज ऋषि है, पूषन्देवता, गयत्री छन्द है। इस सूक्त को आधार करके सायणाचार्य ने भाष्य लिखा है। वह सायनभाष्य इस नाम से विख्यात है। उस भाष्य का भी कुछ अंश दिया है।

दूसरा सूक्त उषस्सूक्त (ऋ.वे.3.59)। और वह ऋग्वेदीय है। ऋग्वेद में उषस्सूक्त के 20सूक्त है। वहां उषादेवी की स्तुति की गई है। उषादेवी के नाम लगभग 200 सूक्तों में उल्लेखित है। उषा शब्द प्रकाश अर्थक वस्-धातु से बना है। इसी प्रकार उषा शब्द का अर्थ प्रकाशिका है। उषादेवी के वर्णन काल में वैदिक ऋषियों ने अपने काव्य की प्रतिभा को दिखाया है। ऋग्वेदीय उषस्सूक्त के वामदेव ऋषि है, त्रिष्टुप् छन्द है, उषा देवता है। तीसरे मण्डल में विद्यमान उन्सठवां सूक्त है (3.59)।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- पूषन्सूक्त को जान पाने में;

- पूषन्देवता के स्वरूप को जान पाने में;
- उषादेवी विषय में जान पाने में;
- उषादेवी के महत्व को समझने में;
- उषादेवी के विषय में विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- मन्त्रों का संहिता पाठ जान पाने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का पदपाठ जान पाने में;
- अपने आप मन्त्रों की व्याख्या करने में;
- अपने आप मन्त्रों का अन्वय आदि करने में;
- मन्त्र में स्थित शब्दों का व्याकरण जानने में;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- लौकिक वैदिक शब्दो का भेद जानने में।

।।पूषन्सूक्त।।

9.1 मूलपाठ

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये।
धिये पूषन्नयुज्महि।।1।।

अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम्।
वामं गृहपतिं नय।।2।।

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय।
पणेश्चिद्वि म्रदा मनः।।3।।

वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि।
साधन्तामुग्र नो धियः।।4।।

परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे।
अथेमघस्मभ्य रन्धय।।5।।

वि पूषघ्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम्।
अथेमस्मभ्य रन्धय।।6।।

आ रिरव किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे।
अथेमस्मभ्य रन्धय।।7।।

यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां विभर्ष्यांघृणे।
तया समस्य हृदयघ्मा रिरव किकिरा कृणु॥8॥

या ते अष्टा गोओपशाघृणे पशुष्साधनी।
तस्यास्ते सुम्नमीमहे॥9॥

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत।
नृवत्कृणुहि वीतये॥10॥

9.1.1 मन्त्र व्याख्या (पूषन् सूक्त)

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये।
धिये पूषन्नयुज्महि॥1॥

पदपाठ- वयम्। ओं (ॐ) इति। त्वा। पथः। पते। रथम्। न।
वाजऽसातये। धिये। पूषन्। अयुज्महि॥1॥

अन्वय- पथस्पते पूषन्, वयम् उ वाजसातये धिये रथं न त्वा अयुज्महि।

व्याख्या- हे पुष्टि करने वाले, मार्ग के स्वामिन् हम लोग ही संग्राम का विभाग करने वाले प्रज्ञा के लिये आपको विमान आदि यान के समान प्रयुक्त करते है। उ यह पूरक है।

सरलार्थ- हे स्वामिन् हमारे द्वारा धनप्राप्ति के लिये तथा कार्य को पूर्ण करने के लिए आप हमारे सहायक है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- पथस्पते-पथ मार्ग का स्वामी सम्बोधन एकवचन में यह रूप बनता है।
- सातये-सन्-धातु से क्तिनप्रत्यय होने पर चतुर्थी एकवचन में यह रूप बनता है।
- अयुज्महि-युजिर् इस धातु से लुङ् लकार में उत्तम पुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।
- पूषन्-पुष्-धातु से कनिन्प्रत्यय करने पर सम्बोधन एकवचन में यह रूप बनता है।

अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयंतदक्षिणम्।
वामं गृहपतिं नय॥2॥

पदपाठ- अभि। नः। नर्यम्। वसु। वीरम्। प्रयंतऽदक्षिणम्।
वामम्। गृहऽपतिम्। नय॥2॥

अन्वय- नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणं वामं गृहपतिं अभि नः नय।

व्याख्या- हे पुष्टि करने वाले! आप मनुष्यों में उत्तम मनुष्यों के लिए हितकारी धन को प्राप्त कराते हैं, हे स्वामी आप ही हम लोगों के लिए उत्तम पति, उत्तम भार्या, प्रशंसित धन की प्राप्ति करा के उत्तम शिक्षा से धर्म आचरण की प्राप्ति कराइये।

सरलार्थ- हे स्वामी मनुष्यों को धन के प्रति, शुभ लक्षण युक्त पुरुष के समान हमारे को भी प्रशंसनीय गृहस्थ की प्रति ले जाइये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- नर्यम्-नृशब्द से यत्प्रत्यय करने पर, नृभ्यः हितम् यह रूप बनता है।
- वामम्-वन्-धातु से मनिन् प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- प्रयत- प्रपूर्वक यत्-धातु से क्तप्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय।
पणेश्चिद्वि म्रदा मनः॥3॥

पदपाठ- अदित्सन्तम्। चित्। आघृणे। पूषन। दानाय। चोदय। पणेः। चित्। वि। म्रद। मनः॥3॥

अन्वय- आघृणे पूषन्, अदित्सन्तं दानाय चोदय, पणेः चित् मनः वि म्रद।

व्याख्या- हे सब ओर से प्रकाशमान स्वामी आप देने की अनिच्छा करते हुए भी देने वाले को देने के लिए प्रेरणा दीजिये, फिर भी देने वाले को और अपने मन को भी प्रेरणा दीजिये, और जुआ खेलने वाले के भी अन्त करण को विशेष रूप से दण्ड दीजिये।

सरलार्थ- हे प्रकाशयुक्त भगवन! अनिच्छुक व्यक्ति को देने के लिए प्रेरीत करें। व्यापारी के मन को भी विशेषरूप से सरल कीजिये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- अदित्सन्तम्- सन्नन्त दा-धातु से शतृ प्रत्यय करने पर दित्सत् इस रूप में नञ्समास करने पर द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है।
- चोदय-चुद्-धातु से यण लोट् लकार में करने पर मध्यमपुरुष एकवचन में चोदय यह रूप बना।
- विम्रद-विपूर्वक म्रद्-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में विम्रद यह रूप बना।

वि पथो वाजसातये चिनुहि। वि। मृधो जहि।
साधन्तामुग्र नो धियः॥4॥

पदपाठ- वि। पथः। वाजऽसातये। चिनुहि। वि। मृधः। जहि। साधन्ताम्। उग्र। नः। धियः॥

अन्वय- उग्र, वाजसातये पथः विचिनुहि, मृधाः वि जहि, नः धियः साधन्ताम्।

व्याख्या- हे तेजस्वी सेनापति आप विज्ञान अथवा धन की प्राप्ति, अथवा संग्राम के लिए मार्ग का संचय करो तथा सग्रामों में प्रवृत दुष्टों को विशेषता से मारो जिससे हमारी बुद्धियाँ कार्यो को सिद्ध करे।

सरलार्थ- हे पूषन् आप उत्तम निर्भय मार्गों को बनाओ, उनमे विपथगामियों को मारो जिससे सब की बुद्धियाँ उत्तम कर्मो की उन्नति करने के लिए प्रवृत हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- चिनुहि- चि-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप बना।
- मृधाः-मृध-धातु से क्विप् करने पर द्वितीया बहुवचन में यह रूप बना।
- जहि-हन्-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध हुआ।
- साधन्ताम्-आत्मनेपदि साध्-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष बहुवचन में।

परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे।
अथेमस्मभ्य रन्धय॥5॥

पदपाठ- **परि। तृन्धि। पणीनाम्। आरया। हृदया। कवे। अथ। ईम्। अस्मभ्यम्। रन्धय॥**

अन्वय- कवि, आरया पणीनां हृदया परि तृन्धि, अथ ईन् अस्मभ्यं रन्धाय।

व्याख्या- हे कवि! आप उत्तम कोड़ा से द्युत आदि व्यवहार करने वाले पुरुषो के हृदयों को सब और से मारो इसके अनन्तर हमारे लिए सब ओर से दुष्टों को पीड़ित करो और हमारे लिये सुख दीजिये।

सरलार्थ- हे प्राज्ञ जो अपवित्र शिक्षा देने वाले और छली पुरुष अपने राज्य में हो उनको अच्छे से दंड दीजिये जिससे न्यायमार्ग के बीच हम लोग सुखी हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- तृन्धि-तृद्-धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बना।
- रन्धाय-रध्-धातु से लोट् लकर मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध हुआ।
- हृदया-हृदय शब्द का द्वितीया बहुवचन में वैदिक रूप है। लोक में तो हृदयानि है।
- आरया-ऋ-धातु से अण टाप करने पर तृतीया एकवचन में यह रूप बना।

पाठान्त प्रश्न

883. पूषन्सूक्त के कौन ऋषि हैं, क्या छन्द है, और देवता कौन है?

884. उ इसका क्या अर्थ है?

885. पथस्पते यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

886. सातये यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

887. अयुज्महि यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

888. पूषन् यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

889. नर्यम् इसका क्या अर्थ है?

890. प्रयतदक्षिणम् इसका विग्रह क्या है?

891. नर्यम् यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

892. आघृणे इसका क्या अर्थ है?

893. प्रयतम् इसका क्या अर्थ है?

894. तृन्धि यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

895. चिनुहि यह रूप कैसे सिद्ध हुआ है?

896. मृधः इसका क्या अर्थ है?

897. हृदया इसका लौकिक रूप क्या है?

9.1.2 मन्त्र व्याख्या

विपूषन्नारया तुद पणेरिंच्छ हृदि प्रियम्।
अथेमस्मभ्य रन्धय॥6॥

पदपाठ- **वि। पूषन्। आरंया। तुद। पणेः। इच्छ। हृदि। प्रियम्॥ अथ। ईम्। अस्मभ्यम्। रन्धय॥6॥**

अन्वय- पूषन्, आरया वितुद, पणेः (हृदि) प्रियम् इच्छ, अथ ईम् अस्मभ्यं रन्धय॥

व्याख्या- हे पूषन्, आप दुष्टों को सब ओर से अति पीड़ित करो तथा हमारे लिए हृदय में प्यार की इच्छा स्थापित करो इसके अनन्तर कोड़ों से बैलों के समान प्रशंसित व्यवहार करने वाले के असम्बन्धि जनों को विशेषता से पीड़ा दो॥

सरलार्थ- हे पूषन् आप दुष्टों को दण्ड देकर श्रेष्ठो का सत्कार कर सब को श्रेष्ठ कर्मो में प्रेरणा दो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- तुद-तुद्-धातु से लोट लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप बना।
- इच्छ-इष्-धातु से लोट लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

टिप्पणी

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे।
अथेमस्मभ्य रन्धय॥7॥

पदपाठ- **आ। रिख। किकिरा। कृणु। पणीनाम्। हृदया। कवे॥ अथ। ईम्। अस्मभ्यम्। रन्धय॥7॥**

अन्वय- कवे, पणीनां हृदया आ रिख, किकिरा कृण उ, अथ ईम् अस्मभ्यं रन्धाय।

व्याख्या- हे कवि! आप व्यवहार करने वालों के व्यवस्था पत्रों को सब ओर से लिखो तथा दुष्टों के हृदय को अति पीड़ा दो, इसके बाद हम लोगों के लिए सुख करो।

सरलार्थ- हे प्राज्ञ पूषन् आप व्यापारी के हृदय को अनुकूल करो और कोमल भी करो। उसके बाद वह हमारे वश में रहें।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- रिख-रिख्-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- किकिरा-कृ-धातु से अच करने पर द्वितीया बहुवचन में नपुंसकलिङ्ग में वैदिक रूप है। लोक में तो किकिराणि यह रूप बनता है।
- कृणु-कृ-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में। (कुरु इसका वैदिकरूप है -कृणु) यह रूप बनता है।

यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे।
तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु॥8॥

पदपाठ- **याम्। पूषन्। ब्रह्मऽचोदनीम्। आराम्। बिभर्षि। आघृणे॥ तया। समस्य। हृदयम्। आ। रिख। किकिरा। कृणु॥8॥**

अन्वय- आघृणे पूषन्, ब्रह्मचोदनीयम् आरां विभर्षि तया समस्य हृदयं आरिख, किकिरा कृणु।

व्याख्या- हे स्वामी सब ओर से न्याय के प्रकाश करने वाले आप जिस विद्या धन प्राप्ति के लिए प्रेरणा करने तथा काष्ठ के विभाग करने वाली आरी को धारण करते हो उससे तुल्य अर्थात जो सब में बुद्धिवाला है उसके हृदय को अच्छे प्रकार से लिखो और उत्तम गुणों को फैलाओ।

सरलार्थ- हे प्रकाशमान पूषन् आप विद्या और धन की प्राप्ति की प्रेरणा के समान राजनीति को धारण करो जिससे सब की न्याय व्यवस्था हो सके।

टिप्पणी

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- ब्रह्मचोदनीम्-ब्रह्म उपपद से चुद्-धातु से ल्युट् लकार और ङीप करने पर यह रूप बनता है।
- विभर्षि-विपूर्वकभृ-धातु से लट लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी।
तस्यास्ते सुम्नमीमहे॥9॥

पदपाठ- **या। ते। अष्ट्रां। गोऽओपशा। आघृणे। पशुऽसाधनी॥**
तस्याः। ते। सुम्नम्। ईमहे॥9॥

अन्वय- आघृणे, ते या गोओपशा पशुसाधनी अष्ट्रा ते तस्याः सुम्नम् ईमहे।

व्याख्या- हे सब ओर से पशु विद्या का प्रकाश करने वाले जो आपकी व्याप्त होने वाली जिसमे गौयें परस्पर सोती हैं और जिसमें पशुओं को सिद्ध करते हैं वह क्रिया वर्तमान है उससे आपके सुख को हम लोग मागंते हैं।

सरलार्थ- हे प्रकाशमान जिस क्रिया से पशु बढ़े उस क्रिया को बढ़ाकर सुख को मांगो। हम तुम्हारे अस्त्रों के लिए सुख शान्ति चाहते है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- अष्ट्रा-अश्-धातु से ष्ट्रन और टाप् करने पर यह रूप बनता है।
- गोओपशा-गवाम् ओपशा यहाँ तत्पुरुष समास है।
- पशुसाधनी- पशु को साधना। साध्-धातु से ल्युट् ङीप् करने पर साधनी यह रूप बनता है।
- सुम्नम्-सुपूर्वक म्ना-धातु से कप्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है।
- ईमहे-आत्मनेपदि ईङ्-धातु से उत्तमपुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत।
नृवत्कृणुहि वीतये॥10॥

पदपाठ- **उत। नः। गोऽसनिम्। धियम्। अश्वऽसाम्। वाजऽसाम्। उत॥**
नृऽवत्। कृणुहि। वीतये॥10॥

अन्वय- नः गोषणिम् उत अश्वसां उत वाजसां धियं नृवत् वीतये कृणुहि।

व्याख्या- हे पूषन् आप हम लोगों के प्राप्ति के अर्थ गौओं को अलग-अलग करने वाली और घोड़ों का विभाग करने वाली और अन्नादि पदार्थों का विभाग करने वाली उत्तम बुद्धि को मनुष्यों के तुल्य करो।

सरलार्थ- हे पूषन् हमको गाये प्राप्त हों, घोड़े प्राप्त हों और अन्नादि की प्राप्ति की अभिलाषा को पूर्ण करके राजा के समान आनन्द को पूर्ण करो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- गोषणिम्-गोपूर्वक षणु-धातु से इप्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- अश्वसाम्, वाजसाम्-षष्ठी बहुवचन में वैदिक रूप है। लोक में तो अश्वानाम्, वाजानाम् यह बनता है।
- नृवत्-शब्द से मतुप्प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- वीतये-वी-धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर वीति, उसका चतुर्थी एकवचन में रूप बनता है।
- कृणुहि-कृ-धातु से लोट लकार मध्यमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप है। लोक में तो कुरु रूप बनता है।

पाठान्त प्रश्न

898. आरा इसका क्या अर्थ है?
899. पणिः इसका क्या अर्थ है?
900. वि तुद इसका क्या अर्थ है?
901. किकिरा इसका क्या अर्थ है?
902. किकिरा इसका लौकिक रूप क्या है?
903. किकिरा यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
904. कृणु इसका लौकिक रूप क्या है?
905. ब्रह्मचोदनीम् यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
906. अष्ट्रा यह रूप कैसे सिद्ध होते?
907. गोओपशा यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
908. सुम्रम् यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
909. ईमहे यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
910. सुम्नम् इसका क्या अर्थ है?
911. वीतये इसका क्या अर्थ है?
912. कृणुहि इसका लौकिक रूप क्या है?

टिप्पणी

9.2 पूषन्देव का स्वरूप

ऋग्वेद में वर्णित सभी देवों की प्राकृतिक शक्ति भावना से कल्पना की है। परन्तु पूष देव के विषय में वैसा कुछ भी नहीं सुना जिससे उसकी प्राकृतिक शक्ति में कल्पना की जाये ऐसा नही कह सकते हैं। पूषा-यह शब्द पुष्-धातु से निष्पन्न हुआ है, पुष् धातु का अर्थ पोषण है। अत:जो शक्ति देने वाला है और जो पोषक है उसे ही पूषा-शब्द से कहा जाता है। हमारे जगत में अन्तरिक्ष स्थानीय सूर्यदेव ही सबसे उत्तम पोषक है। वह जैसे प्राणियों के जीवन शक्ति के पोषक हैं, वैसे ही भौतिक सम्पदा की वृद्धि में भी सहायक हैं, अथवा जड़ पदार्थों का पोषण करते हैं। सूर्य के उस प्रकार के स्वरूप को ही पूषरूप से वैदिक ऋषियों के द्वारा कल्पना की गई है। अत: पूषा द्युस्थानीय देव हैं।

प्राचीन आचार्यों को भी पूष देव के पोषण करने के विषय में ज्ञान था। निरुक्तकार यास्क महर्षि ने अपने निरुक्त ग्रन्थ में पूषा शब्द की व्युत्पत्ति दिखाते समय पूष देव के भरण-पोषण के रूप का ही वर्णन किया है। और भी यास्क के द्वारा कहा गया है- 'यद्रश्मिपोषं पुष्यति तत् पूषा भवति'। (12.7) अन्य जगह उस पूषदेव को आदित्य रूप से ही वर्णन किया गया है और उसके बारे में कहा गया है- 'सर्वेषां भूतानां गोपायितादित्य:' (7.9) इति। अन्य वैदिकग्रन्थ में शौनक के द्वारा कहा गया है-

'पूष्यन् क्षितिं पोषयति प्रणुदन् रश्मिभिस्तम:।
तेनैनमस्तौत् पूषेति भरद्वाजस्तु पञ्चभि:॥'(2.63)। इति।

मध्य काल में वेदव्याख्या कर्ता सायण ने पूषदेव को उदीष्ट कहा- 'जगत्पोषक: पृथिव्यभिमानिदेव:'। इति। ऋग्वेद में साकल्य के द्वारा आठ सूक्तमें पूषदेव की स्तुति की है। वह आघृणि: अर्थात प्रकाशमान हैं। वह कपर्दी अर्थात् किरणों से युक्त हैं। सफेद वर्ण के और तेज बाण उसके प्रधान शस्त्र हैं। उसका वाहन बकरा है। वैसे कहा भी है- 'अजा: पूष्णश्च वाजिन'(बृहद्देवता8.141)। घी से मिला हुआ जौ का सत्तु उसका प्रधान खाद्य है। ब्राह्मण साहित्य में कहा गया है की दांत नही होने से वह चूर्ण खाद्य द्रव्य को खाते थे। वैसे शुक्लयजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण में उसे स: अदन्तक: आसीद् ऐसा कहा गया है। उसके विषय में एक उपाख्यान भी प्राप्त होता है।

ऋग्वेद का समाज कृषि प्रधान था। और कृषिक्षेत्र में पशूओं का उपयोग अधिक था। उससे पशुपालन को भी जीविका रूप से उन्हें स्वीकार किया है। पूषा ऋग्वेद में पशुपालको का प्रधान देव थे। गायों की सम्पत्ति ही सबसे श्रेष्ठ सम्पदा थी ऐसा सुना जाता है। अत: उनकी रक्षा के लिए सभी जागरूक थे। अत: वे पूषदेव के मन्त्रों में प्रार्थना करते है की हे पूषन् हमारा गोधन हमेशा सुरक्षित हो, शेर आदि पशुओं के भय से मुक्त हो, कुए आदि में नहीं गिरें। नये घास के मैदान की खोज में वे दूर-दूर देशों में जाते थे। तब जाने के समय में वे इसी देव की स्तुति करते थे, क्योंकि पूषदेव ही उनको मार्ग दिखाने वाला और रक्षक था। वह पशुपाल कों को बाधाओं से रहित मार्गों में प्रवृत

टिप्पणी

करता, भयानक जन्तुओं से और दुष्ट मनुष्यों के हाथों से उनकी रक्षा करता है। वह देव घास से युक्त क्षेत्रों में उनको प्रवृत करता है। और जब पशु खो जाते तो वह ही उन पशुओं को प्राप्त कराता है। ऋग्वेद में विशिष्ट पथप्रदर्शक के रूप में उस देव का ही आगमन होता है। वैसे ही मृत पुरुषों के परलोक जाने के समये में वह ही पथप्रदर्शक के रूप में आते थे ऐसा ऋग्वेद के मन्त्रों में वर्णन देखा जाता है।

इस प्रकार अनेक कर्मो में उस देव की प्रधानता देखी जाती है, ऋषियों ने वेदमन्त्रों में उसकी स्तुति कि है।

9.3 पूषन्सूक्त का सार

ऋग्वेदसंहिता के छठे मण्डल का चौवनवां (54) सूक्त हि पूषन्सूक्त है। इस सूक्त के ऋषि भारद्वाज, छन्द गायत्री, और देवता पूषा है। यहाँ दश मन्त्र हैं। जो पुरुषनाश हुए धन को प्राप्त करना चाहता है, उसे इस सूक्त का जप करना चाहिए ऐसा आश्वलायन सूक्त में इस सूक्त का विनियोग प्राप्त होता है। वैसे भी वेद के आश्वलायन गृह्यसूत्र में - 'संपूषन् विदुषा इति अथवा नष्टमधिजिगमिषन् मूलहो वा' ऐसा कहा गया है।

हे मार्गरक्षक पूषन् हम धन प्राप्ति के लिए और कार्यो को पूर्ण करने के लिए आपको स्मरण करते है। तुम हमको समर्थ बनाओ। तुम उस पुरुष के रहस्य को हमे दो, उस सरल उपाय से नष्ट हुए धन की प्राप्ति के विषय में उपदेश देते हैं, और हमारे नष्ट धन कहाँ है यह दिखाता है। हे पुषन् देव हमारे ऊपर अनुग्रह करो जिससे हम उस मनुष्य के साथ को प्राप्त करें जो मनुष्य जानता है की हमारे नष्ट गायें और पशु कहाँ है। वह ही हमको उन घरों का बोध कराये जहाँ हमारी अपहरण की गई गायें हैं।

पूषन्-देव का शस्त्र चक्र है। वह चक्र अविनाशि है अर्थात् उस चक्र का विनाश कोई भी नहीं कर सकता है। इस चक्र का तोड़ भी नहीं है। इस चक्र की जो धार है वह व्यर्थ नहीं है, अर्थात् वह धार कभी कम नहीं होती उस चक्र से ही उन चोरों का विनाश करो जिन्होंने हमारे धन आदि को लुटा है। वैसे वेद के पूषन्सूक्त में कहा-

'पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते।
नो अस्य व्यथते पविः'॥3। इति।

जो पूषदेव के लिए हवि देता है, अर्थात् हवि द्रव्य के द्वारा जो इसकी पूजा करता है, उस यजमान को पूषा कभी भी नहीं भूलता है। और भी पूषदेव उसके लिए सबसे पहले सभी प्रकार के धन को देते हैं। वैसे पूषन् सूक्त में कहा-

'यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते।
प्रथमो विन्दते वसु'॥इति॥4।

हे पूषन्, हमारे पशुओं के रक्षा के लिए हमेशा उनके पीछे जाईये। हमारे घोड़ों को चोर के हाथों से छुड़ाओ, और हमें धन दीजिये। वैसे वेद में - 'पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः। पूषा वाजं सनोतु नः'।इति। जो सोमरस का पोषण करता है, उस यजमान के गायों के पीछे जाओ और उनकी रक्षा करो। और भी मेरे जैसे तुम्हारे स्तोता हैं, उनकी जो गायें हैं उनके पीछे जाओ। और उनकी रक्षा करो। वैसे वेद के पूषन्सूक्त में कहा-

'पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः।
अस्माकं स्तुवतामुप'।इति।

हमारी जो गायें है उनको कोई भी कष्ट अथवा उनका नाश न हो, किसी को भी गाय को कोई पीड़ा न हो। कोई भी गाय कुएँ में गिरकर नहीं मरे। अतः तुम हमारी दोष से रहित गायों के साथ सायंकाल में आओ। और भी कहा गया है-

माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे।
अथारिष्टाभिरा गहि।। इति।

जो पूषा हमारी प्रार्थना को सुनाता है, और दरिद्रता को दूर करता है, जिसका धन कभी भी नष्ट नही होता है, उस प्रकार का जो पूषदेव है, और भी जो सबका स्वामी है, अर्थात् शासन कर्ता उस प्रकार के पूषदेव की हम प्रार्थना करते है। और भी कहा गया है-

'शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम्।
ईशानं राय ईमहे'।इति।

हे पोषक देव तेरे कार्यों से निरन्तर कभी भी हमको दुःख अथवा कष्ट की प्राप्ति नहीं होती है। हम हमेशा तेरे स्तोता थे। अपने दक्षिण हाथ को मेरी तरफ फैलाओ, मेरा जो धन नष्ट हो गया है, उस धन को मुझे लौटाओ अर्थात् नष्ट गाय-धन पुनः आयें यह यजमान की अन्तिम प्रार्थना है। और भी वेद में कहा-

'परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम्।
पुनर्नो नष्टमाजतु'।इति।

इस प्रकार ये पूषन्सूक्त में स्थित दश ऋग्वेद के मन्त्र हैं, उनका सार अतिसंक्षेप से यहाँ पर प्रस्तुत किया है।

पाठसार-1

इस पाठ में दो सूक्त विद्यमान है। उन दोनों में प्रथम पूषन् सूक्त है। इस पूषन् सूक्त में दश मन्त्र हैं। दश मन्त्रों के द्वारा सभी प्रकार की प्रार्थना की गई है। वहां आदि मन्त्र में धन प्राप्ति के लिए कार्यों को पूर्ण करने के लिए कहा गया है। दूसरे मन्त्र

टिप्पणी

में धनवान और बलवान गृहस्थ की प्रशंसा करते हुए हमे भी उसी प्रकार बनाने के लिए प्रार्थना की गई है। तीसरे मन्त्र में देने की इच्छा न रखने वालों मनुष्यों को देने के लिए प्रेरित करने की प्रार्थना की है। चौथे मन्त्र में धन प्राप्ति के मार्ग में विद्यमान शत्रु के नाश के लिए प्रार्थना की गई है। पाँचवें मन्त्र में व्यापारी के हृदय की चारों दिशाओं में कीर्ति के लिए प्रार्थना की गई है। छठें मन्त्र में पूर्वमन्त्र के समान ही कहा गया है। सातवें मन्त्र में व्यापारी के हृदय को कोमल करने के लिए प्रार्थना की गई है। आठवें मन्त्र में सभी मनुष्यों के हृदयों को कोमल करने के लिए प्रार्थना की गई है। नौवें मन्त्र में सुख प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गई है। दशवें मन्त्र में गायों की प्राप्ति के लिए, घोड़ों की प्राप्ति के लिए, और अन्न की प्राप्ति के लिए अभिलाषाओं को और राजा के समान आनन्द देने के लिए प्रार्थना की गई है। इस प्रकार पूरे पूषन् सूक्त में प्राय:व्यापारी के हृदय को कोमल करने के लिए और धन प्राप्ति के लिए अधिकांश प्रार्थना की है।

उषस्सूक्त

9.4 (ऋ.वे.3.59) मूलपाठ

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेता:
स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणी देवि युवति: पुरन्धि-
रनुव्रतं चरसि विश्ववारे॥1॥

उषो देवमर्त्या वि भाहि
चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा
हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये॥2॥

उष: प्रतीची भुवनानि विश्वो
र्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतु:।
समानमर्थं चरणीयमाना
चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व॥3॥

अव स्यूमेव चिन्वती मघो
न्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।
स्व1ऽ0र्जनन्ती सुभगा सुदंसा
आन्ताद्दिव: पप्रथ आ पृथिव्या:॥4॥

अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं
प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम्।
ऊर्ध्वं मधुध दिवि पाजो अश्रे
त्र रोचना रुरुचे रण्वसदृक्॥5॥

ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या
रेवती रोदसी चित्रमस्थात्।
आयतीमग्न उषसं विभातीं
वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः॥6॥

ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्
वृषा मही रोदसी आ विवेश।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया
चन्द्रेव भानुं वि-दधे पुरुत्रा॥7॥

9.4.1 मन्त्र व्याख्या

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः
स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणी देवि युवतिः पुरन्धि
रनुव्रतं चरसि विश्ववारे॥1॥

पदपाठ- उष!। वाजेन। वाजिनि। प्रऽचेताः। स्तोमम्। जुषस्व। गृणतः॥
मघोनि। पुराणी। देवि। युवतिः। पुरम्ऽधिः। अनु। व्रतम्।
चरसि। विश्ववारे॥

अन्वय- वाजेन वाजिनि मघोनि उषः प्रचेताः गृणतः स्तोमं जुषस्व। विश्ववारे देवि पुराणी युवतिः पुरंधिः व्रतम् अनुचरसि।

व्याख्या- अन्न से अन्नवति तथा धन से धनवति हे उषा देवी। तुम प्रकृष्ट ज्ञान वाली होती हुई स्तुति करने वाले स्तोता के स्तोत्रा को ग्रहण करो सम्पूर्ण विश्व के द्वारा वर्णनीय, दिव्य गुणों से सम्पन्न हे उषा देवी तुम पुरातन युवती के समान हो अथवा सनातन काल से युवती ही बनी हुई हो, बहुत अधिक बुद्धिशाली हो और तुम हमारे यज्ञ आदि नियम व्रत को लक्ष्य करके विचरण करती हो अर्थात उनका पालन करती हो।

सरलार्थ- अन्नवति और धनवति हे उषा! प्रकृष्टज्ञान से सम्पन्न होती हुई तुम स्तुति करने वाले मनुष्य की प्रार्थना को स्वीकार करो। हे सब कुछ चाहने वाली देवि उषा! पुरातन युवति के समान नाना प्रकार से प्रशंसनीय होती हुई इस यज्ञ को लक्ष्य करके विचरण करो।

टिप्पणी

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- प्रचेता:- प्रपूर्वक चित्-धातु से तृच् प्रत्यय करने पर प्रथमा बहुवचन में प्रचेता: यह रूप बनता है।
- गृणत:- गृ-धातु से श्ना प्रत्यय करने पर और शतृ प्रत्यय करने पर षष्ठी एकवचन में गृणत: यह रूप बनता है।
- जुषस्व- जुष्-धातु से लोट्लकार मध्यमपुरुष एकवचन में जुषस्व यह रूप बनता है।
- चरसि- चर्-धातु से लट्लकार मध्यमपुरुष एकवचन में चरसि यह रूप बनता है।

उषो॑ देवमर्त्या॑ वि भा॑हि
चन्द्ररथा सूनृता॑ ईरयन्ती।
आ त्वा॑ वहन्तु सुयमा॑सो अश्वा
हिर॑ण्यवर्णां पृथुपाज॑सो ये॥2॥

पदपाठ- **उषः। देवि। अम॑र्त्या। वि। भाहि। चन्द्रऽर॑था। सूनृता॑।**
ईरयन्ती॥ आ। त्वा। वहन्तु। सुऽयमा॑सः। अश्वाः। हिर॑ण्यवर्णाम्।
पृथुऽपाज॑सः। ये॥

अन्वय- उषः देवि अमर्त्या चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती वि भाहि। पृथुपाजसः सुयमासः ये अश्वाः हिरणवर्णां त्वा आ वहन्तु।

व्याख्या- हे उषा देवि अमर्त्या अर्थात मरण धर्म से रहित तुम विशेष रूप से शुशोभित हो जाओ, तुम्हारी वाणी प्रिय हो तथा तुम सत्य वाणी का उच्चारण करो। उस प्रकार की तुम सूर्य किरण के साथ सम्बन्ध होने से विशेष रूप से प्रकाशमान हो, तुम्हारे ये अत्यधिक शक्तिशाली अरूण वर्ण के घोड़े हैं, वे सुंदर शोभायमान रथ में जोड़कर वे स्वर्ण के समान दीप्तिमान तुमको हमारे सम्मुख लायें।

सरलार्थ- हे देवि उषा! दिव्य गुणों वाली तुम मरण धर्म से रहित होती हुई, सत्य और प्रिय वाणी का उच्चारण करती हुई विशेष रूप से प्रकाशित हो। अत्यधिक बलशाली और अच्छी प्रकार से नियंत्रित जो तुन्हारे अरुण वर्ण के घोड़े है, वे स्वर्ण से युक्त आपको हमारे सम्मुख लायें।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- भाहि- भा-धातु से लोट् लकार में मध्यमपुरुष एकवचन में भाहि यह रूप बनता है।
- ईरयन्ती- ईर्-धातु से णिच् प्रत्यय करने पर शतृ प्रत्यय करने पर और ङी प्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में ईरयन्ती यह रूप बनता है।

- वहन्तु- वह्-धातु से लोट् लकार में प्रथमपुरुष एकवचन में वहन्तु यह रूप बनता है।
- सुयमासः- सुयम शब्द का प्रथमाबहुवचन में यह वैदिक रूप है। लौकिक में तो सुयमाः यह रूप बनता है।

उषः प्रतीची भुवनानि विश्वो
ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः।
समानमर्थं चरणीयमाना
चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व॥3॥

पदपाठ- **उषः। प्रतीची। भुवनानि। विश्वा। ऊर्ध्वा। तिष्ठसि। अमृतस्य। केतुः॥ समानम्। अर्थम्। चरणीयमाना। चक्रम्ऽइव। नव्यसि। आ। ववृत्स्व॥**

अन्वय- उषः विश्वा भुवनानि प्रतीची अमृतस्य केतुः ऊर्ध्वा तिष्ठसि, नव्यसि समानं चरणीयमाना चक्रमिव आ ववृत्स्व।

व्याख्या- हे उषा देवि सम्पूर्ण या जितने भी लोक हैं इस सृष्टि में आप उन सभी के सम्मुख अर्थात् सामने जाती हैं। अमृत का मरण धर्म से रहित सूर्य की ध्वजा अर्थात् उनका बोध कराती हैं। आप कभी प्राचीन नही हो सकती हैं, आप हमेशा चिरस्थायी रहेगी। आप हमेशा एक ही मार्ग पर विचरण करती हुई सूर्य के चक्र के समान पुनः पुनः घूमती रहो। वहाँ दृष्टान्त चक्र के समान जैसे-आकाश में चलते हुए सूर्य का चक्र बार बार घुमता है वैसे ही तुम भी घुमती रहती हो।।

सरलार्थ- हे देवि उषा! समस्तलोक के आगे आती हुई मरण धर्म से रहित सूर्य के आगमन की सूचना देते हुई आकाश के मध्य में रहती हो। हे उषा देवी आप हमेशा नवीन रहने वाली हो, एक ही मार्ग में विचरण करती हुई चक्र के समान बार-बार आओ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- प्रतीची- प्रतिपूर्वक अञ्च्-धातु से क्विन्प्रत्यय करने पर प्रतीची यह रूप बनता है। प्रति आभिमुख्येन अञ्चति प्राप्नोति ऐसा सायणाचार्य ने कहा है।
- तिष्ठसि- स्था-धातु से लट्लकार मध्यमपुरुष एकवचन में तिष्ठसि यह रूप बनता है।
- नव्यसि- नव्-धातु से लट्-लकार मध्यमपुरुष एकवचन में नव्यसि यह रूप बनता है।
- चरणीयमाना- चरणीय शब्द से शानच्प्रत्यय और टाप्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में चरणीयमाना यह रूप बनता है।

- ववृत्स्व- वृत्-धातु से यङ्लुङन्त लोट्लकार में मध्यमपुरुष एकवचन में ववृत्स्व यह रूप बनता है।

अव स्यूमेव चिन्वती मघो
न्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।
स्व100र्जनन्ती सुभगा सुदंसा
आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः॥4॥

पदपाठ- **अव। स्यूमऽइव। चिन्वती। मघोनी। उषा। याति। स्वसरस्य।**
पत्नी॥ स्वः। जनन्ती। सुऽभगा। सुऽदंसाः। आ। अन्ताम्। दिवः।
प्रपथे। आ। पृथिव्याः॥

अन्वय- स्वसरस्य पत्नी मघोनी उषा स्यूम इव अव चिन्वती याति, स्वः जनन्ती सुभगा सुदंसा दिवः आ अन्तात् पृथिव्याः पप्रथे।

व्याख्या- धनसम्पति से परिपूर्ण सूर्य की या दिन की पत्नी होती हुई यह उषा देवी वस्त्र के समान आच्छादित करने वाले अन्धकार का विनाश करती हुई अथवा अपने वस्त्र के अंहकार को फैलाती हुई चली जाती हैं। यह सूर्य की पत्नी होती हुई चलती है। वह अपने तेज को उत्पन्न करती हुई सुंदर सौभाग्य युक्त यज्ञरूप कर्म वाली यह उषा द्युलोक के अन्तिम किनारे से लेकर पृथ्वी के अन्तिम किनारे तक फैल जाती है।

सरलार्थ- सूर्य की पत्नी, धनयुक्त उषा देवी वस्त्र के समान विस्तृत अन्धकार का नाश करती हुई जाती है। अपने तेज को उत्पन्न करती हुई सुन्दरी धनयुक्त अग्निहोत्र, आदि यज्ञानुष्ठान को कराती हुई उषादेवी द्युलोक और पृथ्वी लोक के अन्त तक जितना अन्धकार है उसे अपने प्रकाश से हटातीं हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- चिन्वती- चि-धातु से शतृ प्रत्यय करने पर और ङीप्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में चिन्वती यह रूप बनता है।
- जनन्ती- जन्-धातु से णिच प्रत्यय, शतृ प्रत्यय, और ङी प्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में यह वैदिक रूप है। लौकिक में जनयन्ती यह रूप बनता है।
- पप्रथे- प्रथ्-धातु से लिट् लकार आत्मनेपद में प्रथमपुरुष एकवचन में पप्रथे यह रूप बनता है।

अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं
प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम्।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रे
त्प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक्॥5॥

पदपाठ- **अच्छ। वः। देवीम्। उषसम्। विऽभातीम्। प्र। वः। भरध्वम्। नमसा। सुऽवृक्तिम्॥ ऊर्ध्वम्। मधुधा। दिवि। पाजः। अश्रेत्। प्र। रोचना। रुरुचे। रण्वसंदृक्॥**

अन्वय- वः अच्छ विभातीम् उषसं देवीं वः नमसा सुवृक्तिं प्रभरध्वम्। मधुधा दिवि ऊर्ध्वं पाजः अश्रेत्। रण्वसंदृक् रोचना प्ररुरुचे।

व्याख्या- हे स्तुति करने वालों आप अपने सामने स्वच्छ रूप से प्रकाशित होती हुई उषा के प्रति तुम सब नमस्कार के साथ उत्तम सुन्दर स्तुति करो। मधु अर्थात् स्तुतियों को अथवा आदित्य को धारण करने वाली यह उषा देवी द्युलोक में उर्ध्वाभिमुख होकर तेज या बल का आश्रय लेतीं हैं और रमणीय दर्शन वाली होती हुई प्रकाशित होने वाले लोकों को अपने तेज से अतिशय रूप से प्रकाशित करतीं हैं। मधु सोम को कहते है, अथवा उसको धारण करती है।

सरलार्थ- (हे स्तुति करने वालो) आप लक्ष्य करके प्रकाशसमान उषादेवी के प्रति तुम उसका नमस्कार सहित सुंदर स्तुति करो। मधु को धारण करने वाली उषा देवी द्युलोक में ऊपर की और अपने प्रकाश को फैलातीं हैं। रमणीय दर्शन युक्त उषा देवी मनुष्यों को अत्यधिक प्रकाशित करतीं हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- विभातीम्- विपूर्वक भा-धातु से शतृ प्रत्यय और ङीप् प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में विभातीम् यह रूप बनता है।
- भरध्वम्- भृ-धातु से लोट् लकार आत्मनेपद में मध्यमपुरुष बहुवचन में भरध्वम् यह रूप बनता है।
- रोचना- रुच्-धातु से ल्युट् प्रत्यय और टाप् प्रत्यय करने पर रोचना यह रूप बनता है।
- अश्रेत्- श्रि-धातु से लङ लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह वैदिक रूप है।
- रुरुचे- रुच्-धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में रुरुचे यह रूप बनता है।

ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात्।
आयतीमग्न उषसं विभातीं
वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः॥6॥

पदपाठ- **ऋतऽवरी। दिवः। अर्कैः। अबोधि। आ। रेवती। रोदसी इति। चित्रम्। अस्थात्॥ आऽयतीम्। अग्ने। उषसम्। विऽभातीम्। वामम्। एषि। द्रविणम्। भिक्षमाणः॥**

टिप्पणी

अन्वय- ऋतावरी दिवः अर्कैः अबोधि। रेवती रोदसी। चित्रम् अस्थात्। अग्ने! आयतीं विभातीम् उषसं भिक्षमाणः वामं द्रविणम् एषि।

व्याख्या- सत्य से युक्त अथवा सत्य नियमों का पालन करनें वाली उषा देवी द्यु लोक से आने वाले अपने तेज पुंज से जानी जाती है। वह धान्य से युक्त होती हुई यह उषा द्युलोक और पृथ्वी लोक को नाना प्रकार के रूपों से युक्त व्याप्त करके स्थित होती है। हे अग्नि देवता अपनी और आती प्रकाशमान उषा देवी से याचना करते हुए तुम अभीष्ट या बाटने योग्य धान को प्राप्त करो।

सरलार्थ- सत्य से परिपूर्ण उषादेवी द्युलोक से फैले हुए तेज के रूप से जानी जाती है। धन से परिपूर्ण उषादेवी द्युलोक और पृथिवीलोक में अनेक प्रकार से व्याप्त होकर रहती है। हे अग्निदेव आपके सम्मुख आती हुई उषादेवी से बाँटने योग्य धन को प्राप्त करती हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- अस्थात्- स्था-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में अस्थात् यह रूप बनता है।
- अबोधि- बुध्-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में अबोधि यह रूप बनता है।
- आयतीम्- आङ्पूर्वक इण्-धातु से शतृ प्रत्यय और ङीप प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में आयतीम् यह रूप बनता है।
- विभातीम्- विपूर्वक भा-धातु से शतृ प्रत्यय और ङीप् प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में विभातीम् यह रूप बनता है।
- भिक्षमाणः- भिक्ष्-धातु से शानप् प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में भिक्षमाणः यह रूप बनता है।
- एषि - इ-धातु से लट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में एषि यह रूप बनता है।

ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्
वृषा मही रोदसी आ विवेश।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया
चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा॥7॥

पदपाठ- **ऋतस्य। बुध्ने। उषसाम्। इषण्यन्। वृषा। मही इति। रोदसी इति। आ। विवेश॥ मही। मित्रस्य। वरुणस्य। माया। चन्द्रा३इव। भानुम्। वि३दधे। पुरुत्रा॥**

अन्वय- वृषा ऋतस्य बुध्ने उषसाम् इषण्यन् मही रोदसी आ विवेश। मित्रस्य वरुणस्य मही माया चन्द्रा इव भानुं पुरुत्रा विदधे।

व्याख्या- बृष्टि करने वाला सूर्य प्राकृतिक नियमों से अथवा अग्निहोत्र आदि नित्य नियमों के ज्ञापक सत्यभुत दिन के मूल में उषा को प्रेरित करता हुआ या उषा को चाहता हुआ महान द्युलोक और पृथ्वी लोक में सब ओर से प्रविष्ट हो गया। अथवा (वृत्ति) करने वाला सूर्य तथा प्राकृतिक नियमों के मूल में उषा को प्रेरित करता है यह विभिन्न शक्ति रूपा उषा देवी ही सुनहरी कान्ति वाले सूर्य को बहुत स्थानों पर प्रसारित करतीं है।

सरलार्थ- वर्षा द्वारा जल के प्रेरक सूर्य प्राकृतिक नियम अनुसार दिन के आदि में उषा को प्रेरित करके द्यु लोक में और पृथ्वीलोक में व्याप्त हो जाता है। मित्र देवता और वरुण देवता की विचित्र माया से उषा देवी सुनहरी कान्ति के समान सूर्य को बहुत स्थानो में फैलाती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- इषण्यन्- इष्-धातु से णिच्प्रत्यय और शतृप्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में इषण्यन् यह रूप बनता है।
- विवेश- विश्-धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में विवेश यह रूप बनता है।
- विदधे- विपूर्वक धा-धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में विदधे यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

913. उषस्सूक्त के ऋषि कौन है? छन्द क्या है? और देवता कौन है?

914. ईरयन्ती इस पद की उत्पति कैसे हुई?

915. इषण्यन् यह पद कैसे बना।?

916. यह सूक्त किस वेद के अन्तर्गत आता है?

917. विभातीम् यह पद कैसे बना?

918. इस सूक्त में किसकी प्रार्थना का विधान किया है?

919. पप्रथे इस रूप की सिद्धि कैसे हुई?

टिप्पणी

920. अस्थात् यह पद कैसे बना?

921. आदि मन्त्र में किसकी प्रार्थना का विधान किया गया है?

922. अश्रेत् यह पद कैसे बना?

9.5 उषा का स्वरूप

सम्पूर्ण ऋग्वेद में लगभग बीस सूक्त में उषस्-देवी की स्तुति की गई है। प्रकाश अर्थक वस्-धातु से उषस्-शब्द निष्पन्न होता है। उससे उषस्-शब्द का अर्थ होता है प्रकाशमान देवी। उषा देवी जरामरण से रहित हैं ऐसा ऋषियों के द्वारा वर्णन किया गया है। उसका स्वरूप अविनाशि है, परन्तु बहुत स्थानों में द्युलोक की दुहिता के रूप में इसका वर्णन प्राप्त होता है। उषा देवी हि सुजाता अर्थात् उसका जन्म उच्चवंश में हुआ। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में उषस्-देवी का जो मनोहर स्वरूप का वर्णन किया गया है, उस प्रकार के स्वरूप का अन्य किसी भी देवी के लिए नही किया गया है। प्रात:काल के अधिष्ठात्री देवी रूप से उषा का चित्रण किया गया है। सूर्योदय से कुछ समय पहले का जो समय है, वह ही उषस्-देवी के आने का समय कहलाता है। अग्नि का भी उषस्-देवी के प्रेमी होने का वर्णन प्राप्त होता है। अन्न के द्वारा अन्नवती तथा धन के द्वारा धनवती हि उषा देवी कहलाती है। सभी के द्वारा जानी जाती हुई यह पुरातन युवति के समान सुशोभित होती है, विविध उपाय से स्तूयमान यह यज्ञ को उदिष्ट करके विचरण करतीं हैं। सुवर्णमय रथ में सवार होकर के यह सदा प्रिय तथा सत्य ही बोलतीं हैं। अत्यधिक बल से युक्त अच्छी प्रकार से नियन्त्रितस्वर्णिम रथ से युक्त घोड़ों के द्वारा यज्ञस्थल के प्रति ले जाया जाता है।

सम्पूर्ण मनुष्यों के सम्मुख मरणधर्म से रहित सूर्य के आगमन विषय की सूचना देती हुई यह देवी आकाश में रहतीं हैं। प्रत्येक दिन में एक बार ही उदय होने से यह सदैव नवीन ही रहतीं हैं। समान मार्ग में ही विचरण करने से यह चक्र के समान बार-बार आती है। सूर्य की पत्नी अत्यधिक धन से युक्त उषा देवी अन्धकार का नाश करतीं हैं। अपने तेज को उत्पन्न करने वाली सुन्दर धन से युक्त यह अग्निहोत्र को आचरण करती है। उषा देवी प्रत्येक दिन द्युलोक के अन्त तक प्रकाशित होती है। यज्ञ में सोम का धारण करने वाली यह उषा देवी द्युलोक के ऊपर में अपने तेज को फैलातीं हैं। रमणीय दर्शन से युक्त यह उषा देवी सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करतीं हैं। सत्य से परिपूर्ण यह देवी अपने तेज:प्रभाव से इस जगत में इसकी ख्याति है। धन से युक्त यह विविध प्रकार से द्युलोक और पृथ्वी लोक में व्याप्त होकर स्थित हैं। उषा देवी इस जगत में वर्षा के माध्यम से जल को प्राप्त होती हैं। मित्र और वरुण के प्रभाव स्वरूप अथवा शक्ति स्वरूप उषा देवी सूर्य को अनेक स्थान में फैलाती है।

टिप्पणी

9.6 उषस्सूक्त का सार

ऋग्वेद का समाज पुरुष प्रधान था। वहाँ मन्त्रों के अधिष्ठाता रूप से पुरुष देवता की अधिक प्रधानता दिखाई देती है। कुछ सूक्तों में स्त्री देवता की भी स्तुति प्राप्त होती है, परन्तु उनकी स्तुति की संख्या पुरुषों की अपेक्षा से कम ही है। कर्म की विचित्रता के अनुसार हि स्त्री देवता पुरुष के बराबर भाग को प्राप्त नहीं होतीं हैं। वे अन्य देवों की कन्या, पत्नी, अथवा माता होतीं हैं। यद्यपि उनकी अपनी महिमा विद्यमान है, फिर भी पुरुष देवताओं के समीप में उनकी महिमा कम ही है जैसे चन्द्र के आगे अन्य नक्षत्रों की है। सम्पूर्ण रूप से कह सकते है की वैदिक पुरुष तान्त्रिक समाज का नारी पुरुष सम्बन्ध का चित्र देवसमाज के ऊपर अच्छी प्रकार से प्रकाश डालता है।

ऋग्वेद में जहाँ देवियों की स्तुति प्राप्त होती है, वहाँ एक विषय दृष्टि को आकर्षित करता है ऋषियों के कवित्व भावना की और सौन्दर्य चेतना की। प्राकृतिक रूप से माधुर्य को ही सौन्दर्य भावना से प्रधान रूप में व्यक्त किया है। प्रकृति में रुद्ररूप में नहीं परन्तु कोमल-मधुर-रसमय रूप में ही नारी का चिंतन ऋषियों द्वारा किया गया है। उनके लिए ही बहती हुई स्रोत वाली, हरी भरी पृथ्वी, आलोक से परिपूर्ण उषा, अन्धकार रूप में रात्री, और पवित्रता स्वरूप में सरस्वती ये सभी ऋषियों की कल्पना में ही देवी रूप से विख्यात हैं। उनके रूप वर्णन में ऋषियों की अलौकिक भावना का और सौन्दर्य भावना का परिचय सहृदय भावना को प्राप्त होता है।

इस प्रकार की एक देवी उषा हैं। ऋग्वेद की देवियों में उसके समान कोई दूसरी देवी नहीं है। ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल का अस्सीवें (80) सूक्त को उषस् सूक्त कहते हैं। यहाँ सत्यश्रवा ऋषि, उषा देवता, त्रिष्टुप् छन्द। अन्य देवियों की अपेक्षा से उसकी ही स्तुति अधिक संख्या के सूक्तों में की गई है। स्वर्ग की दुहिता उषा द्युलोक की अधिष्ठाता देवीं हैं। सुबह सूर्योदय के पहले मूहूर्त में अथवा पहले आकाश में जो मनोहर अरुण वर्ण की आलोक प्रभा दिशाओं में दिखाई देती है, वह ही हमारी उषादेवी हैं। उषा उदय होने पर रात्रि का अन्धकार धीरे धीरे हट जाता है, पक्षियों के कूजन रात्रि की नीरवता को दूर करता है। उषा की इस महिमा को लक्ष्य करके कवि इसकी वन्दना करता है। 'सा हि दिवो दुहिता' (5.80.5-6)। इति।

ऋग्वेद में स्तूयमान उषा ऋषि की कल्पना में रूप लावण्यवती कोई युवती है। वह प्रकाशवती है (भास्वती), सफेद वस्त्रों से युक्त युवती हैं (युवतिः शुक्रवासाः)। उसके वक्षस्थल खुले हुए है, दर्शन के लिए वह हमेशा अपने शरीर को दिखाती है (1.123.11)। सूर्यदेव उसके पति हैं। मृत्यु लोक में कोई युवक जैसे किसी भी कन्या का अनुसरण करता है, वैसे ही सूर्य भी उषा देवी के पीछे जाते हैं। और वेद में भी कहा है-

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् (1.125.2)। इति।

उसके बाद उषादेवी दोनों अश्विनी कुमारों की मित्र हैं। उषा के पश्चात् सूर्य के उत्पन्न होने से कुछ लोग कहते हैं की वह सूर्यदेव की माता हैं। उषादेवी की सत्ता का अच्छी

प्रकार से उल्लेख ऋग्वेद के मन्त्रो में प्राप्त होता है। वह नियमो का पालन करने वाली है, सत्य बोलने वालीं हैं, और हवी को ले जानी वाली वह ही हैं। वह रोग का नाश करने वाली हैं, संसार को सुख प्रदान करने वालीं हैं, और विचित्र गमन करने वालीं हैं। वह यजमानों के लिए धन को देती है। स्वर्णिम रथ में बैठकर वह विश्व में व्याप्त है। उसके आने से जीवजगत में प्राणों की स्फुरति होती है। नर्तकी जैसे रात्रि के अन्धकार को दूर करती हुई प्रकट होती है, वैसे ही आलोकमयी उषा रात्रि के अन्धकार का नाश करती हुई और दिशा को प्रकाशित करतीं हैं। वेद में भी कहा है- अधि पेशांसि वपते नृतुरिव। (1.92.4)।

वह निद्रा से जीवजगत् को जगातीं हैं। वह प्राण देने वाली और मुक्ति देने वाली हैं। सूर्य के आगमन की वाणी का उसके द्वारा उद्गोषणा की जाती है। वह ही पृथ्वी की पूर्ति को धारण करती है। उषा की गति ही काल की गति है, वह चिरकाल से युवती है और अमर है। अत: उसकी स्तुति सभी देव करतें हैं।

पाठसार-2

इस पाठ में दो सूक्त प्राप्त होते हैं। वहाँ पूषन्सूक्त पहले भाग में है। उसका सार वहीं दिया गया है। अब यहाँ उषस्सूक्त के अंश का सारांश सम्पूर्ण रूप से देतें हैं।

यह सूक्त ऋग्वेद के तीसरे मण्डल का इकसठवां (61) सूक्त है। इस सूक्त के वामदेव ऋषि उषा देवता और त्रिष्टुप् –छन्द है। यहाँ उषा देवी को लक्ष्य करके प्रार्थना का विधान किया गया है। वहां आदि मन्त्र में प्रार्थना की गई है की सभी चाहने वालों के द्वारा आपकी प्रार्थना करने पर देवी उषा यज्ञ को लक्ष्य करके विचरण करें। दूसरे मन्त्र में प्रार्थना की अनेक गुण से युक्त उषा देवी प्रकाशित होकर के अपने घोड़ों को रथ से जोतकर उस पर सवार होकर के यज्ञस्थल पर आयें। तीसरे मन्त्र में प्रार्थना की गई है की आकाश के मध्य में स्थित उषा देवी बार-बार चक्र के समान आयें। चौथे मन्त्र में कहा गया है की उषादेवी अपने प्रकाश से द्यु लोक का और पृथ्वी लोक के अन्धकार का नाश करतीं हैं। पांचवें मन्त्र में मनुष्यों के द्वारा स्तूय मान मधु को धारण करने वाली उषा देवी कैसे मनुष्यों को अत्यधिक विस्तृत करतीं हैं इसका वर्णन है। छठें मन्त्र में उषा देवी कैसे द्युलोक और पृथ्वी लोक में व्याप्त होकर रहतीं हैं इत्यादि का वर्णन है। सातवें मन्त्र में कैसे सूर्यदेव द्युलोक में और पृथ्वी लोक में व्याप्त होते हैं, और कैसे उषादेवी सूर्य को सभी जगह फैलातीं हैं इत्यादि का वर्णन है।

पाठान्त प्रश्न

पूषन्सूक्त में

923. पूषन्सूक्त का सार लिखो।

924. वणिज क्या क्या करने के लिए पूषदेवता के प्रति कहता है मन्त्र सहित व्याख्या करो।

925. वयमु त्वा पथस्पते... इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

926. परि तृन्धि पणीनामारया... इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

927. या ते अष्टा गोओपशाघृणे... इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

उषस्सूक्त में

928. उषस्सूक्त का सार लिखो।

929. उषो वाजेन... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

930. उषो देव्यमर्त्या... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

931. अव स्तूमेव... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

932. उषः प्रतीची... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

933. अच्छा वो... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

934. ऋतावरी... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

935. ऋतस्य बुधन... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

936. मही मित्रस्य... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1-पूषन्सूक्त में

937. भरद्वाज ऋषि, गायत्री छन्द, पूषन् देवता।

938. पूरक है।

939. पथ मार्ग का पथे सम्बोधन एकवचन में।

940. सन्-धातु से क्तिन् होने पर चतुर्थी एकवचन में।

941. युजिर् इस धातु से लुङ् लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में।

942. पुष्-धातु से कनिन्प्रत्यय करने पर सम्बोधन एकवचन में।

943. मनुष्यों के लिए हितकारी हो।

टिप्पणी

944. जिसे प्रयत्न पूर्वक दक्षिणा दी गई उसे।

945. नृशब्द से यत्प्रत्यय करने पर।

946. सब और से प्रकाशमान।

947. शुद्ध।

948. तृद्-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में।

949. चि-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में।

950. दुष्टों और चौर आदि को।

951. हृदयानि यह लौकिक रूप है।

2-पूषन्सूक्त में

952. कोड़ा।

953. व्यवहार करने वाला।

954. विशेष रूप से पीड़ित करो।

955. व्यवस्थापत्रों को।

956. किकिराणि यह लौकिक रूप है।

957. कृ-धातु से अच करने पर द्वितीयाबहुवचन में नपुंसकलिङ्ग का रुप है।

958. कुरु लौकिक रूप है।

959. ब्रह्म उपपद से चुद्-धातु से लुट् लकार में ङीप करने पर।

960. अश्-धातु से ष्ट्रन और टाप् करने पर।

961. गवाम् ओपशा यहाँ तत्पुरुष समास है।

962. सुपूर्वक म्ना-धातु से कप्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में।

963. आत्मनेपदि ईङ्-धातु से उत्तमपुरुष बहुवचन में।

964. सुख।

965. खाने के लिए।

966. कुरु लौकिक रूप है।

3-उषस्सूक्त में

967. वामदेव ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द और उषा देवता हैं।

968. ईर्-धातु से णिच् प्रत्यय, शतृ प्रत्यय, और ङीप् प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में ईरयन्ती यह रूप बनता है।

969. इष्-धातु से णिच् प्रत्यय और शतृ प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में इषण्यन् यह रूप बनता है।

970. ऋग्वेद में।

971. यहाँ पर भगवती उषादेवी को लक्ष्य करके प्रार्थना का विधान किया गया है।

972. विपूर्वक भा-धातु से शतृ प्रत्यय और ङीप् प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में विभातीम् यह रूप बनता है।

973. प्रथ्-धातु से लिट् लकार आत्मनेपद में प्रथमपुरुष एकवचन में पप्रथे यह रूप बनता है।

974. स्था-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में अस्थात् यह रूप बनता है।

975. आदि मन्त्र में प्रार्थना की गई है की सम्पूर्ण विश्व के द्वारा वरणीय उषा देवी तुम हमारे यज्ञ नियम व्रत आदि को लक्ष्य करके विचरण करती हो।

976. श्रि-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह वैदिक रूप है।

॥ नौवां पाठ समाप्त ॥